भाद्र कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - १५-०९-१९६३
गाथा-४९८ से ५००, ९४, २०९,३३,३४,२३६-२३७, प्रवचन-४

यह उपदेशशुद्धसार, तारणस्वामी रचित। उसमें उपदेश शुद्ध कैसा होना चाहिए और मोक्षमार्ग निश्चय यथार्थ कैसा होना चाहिए (उसका अधिकार चलता है)।४९८। यह उपदेशशुद्धसार। वास्तविक सत्य उपदेश का सार और सत्य उपदेश किसे कहते हैं, मोक्षमार्ग में सच्चा उपदेश किस प्रकार से होता है, यह बात कहते हैं।४९८।

इच्छंति मुक्ति पंथं, इच्छयारेन सुद्ध पंथ दर्संति।
षिपिऊन तिविहि कम्मं, षिपनिक सहकार कम्म विलयंति ॥४९८॥

देखो, पहले क्या कहते हैं? भव्य जीव '**इच्छंति मुक्ति पंथं**' एक तो यह सिद्धान्त पहले लिया कि भव्य जीव जो है, उसकी भावना मुक्तिपंथ की होती है। समझ में आया? यह शुद्ध उपदेश में ऐसा आया कि कोई भी प्राणी मुक्तिपंथ की भावना करे तो वह यथार्थ है। इसके अतिरिक्त कोई पुण्य-पाप, कोई कुटुम्ब कबीला, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मान की प्रार्थना (करता) है, वह भव्य जीव नहीं है। अथवा वह मुक्ति के पंथ का अभिलाषी नहीं है। भाई! भव्य जीव को ऐसा कड़क कहा है। अपने आता है न प्रवचनसार में। ऐसा इसमें भी कहीं कहा है। अभव्य शब्द है।

मुमुक्षु : .... में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इसमें भी आता है कहीं। कहा है। तुमने लिया नहीं? इसमें आता है परन्तु इसमें कहीं कहा था। उसे खबर नहीं। अभव्य नाम लिया है कहीं। अब वह कोई सब लिखा था?

यहाँ कहते हैं कि भव्यजीव मोक्ष का अभिलाषी होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई अभिलाषा होती नहीं। उसकी श्रद्धा में विपरीतता इतनी होनी नहीं चाहिए। यह कहते हैं, देखो ९४ में।

कुगुरुं अधर्मं प्रोक्तं च, कुलिंगी अधर्म संचितं।
मानते अभव्य जीवस्य, संसारे दुष कारनं॥९४॥

भाषा कड़क ली है। कोई भी प्राणी **कुगुरु के कहे हुए अधर्म को कुधर्म में चलनेवाले हैं।** अपना शुद्ध परमार्थ पंथ मोक्ष का है, उसकी भावना नहीं करके कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानता है, और वह कुगुरु-कुशास्त्र को माननेवाला वेषी मिथ्यादृष्टि साधु को जो मानता है, अभव्य जीव श्रद्धान करता है। सेठी! प्रवचनसार में आता है कुन्दकुन्दाचार्य का कि ऐसा न माने (कि) आत्मा का आनन्द है, पर से रहित, ऐसा न माने तो अभव्य है। समझ में आया? देखो, '**अधर्म को कुधर्म में चलनेवाले मिथ्याभेषी साधु को...** जिसकी दृष्टि क्या है, एक समय में पूर्ण आनन्द एक द्रव्य आत्मा और अनन्त गुण का पिण्ड क्या है? परमेश्वरपद अपने अन्दर है। ऐसी जिसे श्रद्धा नहीं, उनसे विरुद्ध कहनेवाले को जो मानता है। **अभव्य जीव श्रद्धान करके पूछता है। यह मान्यता संसार में दुःखों का कारण... 'संसारे दुष कारनं'** शोभालालजी! परीक्षा करनी पड़ेगी, ऐसा कहते हैं। वरना सख्त कहते हैं कि अभव्य है। फिर इसे जरा बचाव करना पड़ा कि भाई! अभव्य ऐसा नहीं। परन्तु वह अभव्य का अर्थ कि नालायक है। समझ में आया? नालायक।

आत्मा एक समय में शुद्ध पूर्णानन्द प्रभु, उसकी पवित्रता की प्रार्थना, भावना, श्रद्धा-ज्ञान नहीं और कुगुरु-कुदेव-कुशास्त्र की श्रद्धा करता है और यह कहता है कि राग में, पुण्य में धर्म है, क्रियाकाण्ड में धर्म है, ऐसा बतलानेवाले को तू मानता है तो तू अभव्य है। देरियाजी! सख्त कहा है। समझ में आया? बराबर कहा है। नालायक है? मोक्ष की अभिलाषा नहीं करता। पिता पुत्र को नहीं कहते? नालायक है? तुझे व्यापार की खबर नहीं—ऐसा कहते हैं। करुणा से कहते हैं, हों! अरे आत्मा! मोक्ष का पंथ दिखलानेवाले ऐसे देव-गुरु-शास्त्र को तू नहीं मानता और तेरी भावना में भी मोक्षपंथ की भावना नहीं और बंधपंथ की भावना है और बन्ध बतलानेवाले, बन्ध बतलानेवाला, बन्ध बढ़ानेवाले मार्ग में तेरी रुचि है तो तू अभव्य है। समझ में आया? यह तो कहते हैं न उसमें। यह कहते हैं, हीरालाल है न!

मुमुक्षु : हमको तो बताया है कि ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भाई यह हीरालाल है न! प्रोफेसर हीरालाल। अभव्य शब्द

कुन्दकुन्दाचार्य में समयसार में, प्रवचनसार में आता है कि अरे... अभव्य! अपना शुद्ध स्वरूप पूर्णानन्द एक समय में सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा तू नहीं मानता तो अभव्य है। तो हीरालाल कहते थे कि ऐसी भाषा नहीं करनी चाहिए। यहाँ आये थे, दो दिन रहे थे। तुम्हारे भी लिखा है, लेख लिखाया है, सबके पास थोड़ा-थोड़ा लिखाया है। समझ में आा? उसे न माने तो अभव्य। अरे! अभव्य है, सुन तो सही। अभव्य कहा है कुन्दकुन्दाचार्य ने। उसका दृष्टान्त दिया, देखो, यहाँ तारणस्वामी भी यह कहते हैं। समझ में आया? अभव्य हो? स्वयं परमानन्द... भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ छह द्रव्य, नौ तत्त्व पदार्थ, सात तत्त्व पंचास्तिकाय, ऐसी मान्यतासहित अपने शुद्धस्वभाव की मान्यता तुझे नहीं है, और दूसरी मान्यता करता है और दूसरी मान्यता बतलानेवाले को तू देव, गुरु और शास्त्र मानता है। देरियाजी! अभव्य कहते हैं यहाँ। तारणस्वामी कहते हैं कि अभव्य है।

देखो, **यहाँ अभव्य जीव से प्रयोजन जीव की तरफ है जो मूढ़ बुद्धि है। संसार रोचक है, विषय का प्रेमी है, ऐसा विधर्म को चाहते हैं जिससे अपना लौकिक प्रयोजन सिद्ध हो सके।** यह चलता है या नहीं? जहाँ-तहाँ मानता है। यह महावीरजी और क्या? पद्मपुरी, पुत्र, पुत्री के लिये मान्यता भगवान के पास मानता है। बतलानेवाले ऐसे। मिलेंगे। धूल में भी मिलेगा नहीं। सुन न! भगवान के पास तो वीतरागभाव है। उस वीतरागभाव से तुझे कहाँ रागादि मिलेंगे? ऐसी मान्यता करनेवाला... मोतीरामजी!

मुमुक्षु : कितनी....

पूज्य गुरुदेवश्री : जितनी भूल है, उतनी समझकर भूल निकालनी पड़ेगी। जितने प्रकार की भूल है, उतने प्रकार की समझण करके निकालनी पड़ेगी, इतनी समझण करनी पड़ेगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कितनी एक घण्टे में? यह तो कोई ऐसी बात नहीं। संसार में तो एक दुकान में पाँच-पाँच हजार वस्तुएँ होती हैं, सबको याद नहीं रखते? दवाखाना याद रहता है या नहीं? हमारी दुकान में पाँच-पाँच हजार वस्तुएँ रहती थीं। उसमें सब भाव याद रहे। इस भाव में आयी थी, यह भाव अभी चलता है, इतनी चीज़

रह गयी, इतनी बाकी है, नया इतना आया है। सबमें एक-एक में तीन पट्टी बात याद रहती थी। नहीं रहती थी ? उसमें क्या ? जिसमें रुचि है, वह याद रहती है। जिसमें रुचि नहीं, वह याद नहीं रहता। कहो, समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि अभव्य है। कुलिंगी, असत्य धर्म की (प्ररूपणा करनेवाला) ऐसे अधर्म के दाता कुलिंगी गुरु की श्रद्धा करता है। **बड़ी भक्ति से उसकी आराधना करता है। जिसके पाप बाँधकर संसार में पाप का फल दु:ख भोगता है। ऐसा करोड़ों देवता-देवियों का स्थापन कुलिंगी गुरु और नाना नामों से कर रखा है।** कहते हैं न, क्षेत्रपाल और फलाना पाल और ढोर पाल। ऐई! यह सब तुम्हारे यहाँ बहुत चलता है। पत्थर रख दिया सामने सिन्दूर चोपड़कर। भगवान एक ओर बैठे। स्थापना निक्षेप एक ओर रहे। पहले चावल इसे लगावे। मूढ़ जीव। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा कौन है और उनकी भावना क्या है, उसकी खबर बिना उसे मानता है। समझ में आया ?

अनेक प्रकार के लौकिक फलों को पालने का लोभ दिया जाता है। मूर्ख प्राणी लाभ की आशा से हमारे लौकिक स्वार्थ सिद्ध होंगे। इस स्थापनाओं की बड़ी भक्ति करते हैं। मूढ़ है। वहाँ महावीरजी कैसे ? पद्म—पद्मपुरी। सिर फोड़ता है वहाँ। रोगी हो तो रोग मिट जाये। धूल भी मिटता नहीं। तेरी असाता का उदय मिटे तो मिटे। लाख हो तो भी मिटे नहीं। कोई देवता भी दे नहीं सकता। वहाँ कहाँ... वह तो भगवान की प्रतिमा है। प्रतिमा दे सकती है वहाँ ? ऐसा माननेवाला, भगवान के विरुद्ध मान्यता जिसकी है, ऐसी मान्यतावाला मानता है तो अभव्य जीव कहने में आता है। कहो, मन्त्रीजी ! अभव्य कहते हैं यहाँ। लो, यह कठिन है। कठिन क्या है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभव्य का ही लक्षण है। नालायक का लक्षण है, ऐसा कहते हैं। देखो, समझ में आया ? फिर कहते हैं, देखो !

'इच्छंति मुक्ति पंथं' एक महासिद्धान्त पहले लिया। भव्य जीव तो मोक्ष के मार्ग की ही इच्छा करते हैं। निश्चयमोक्षमार्ग। व्यवहार राग है। समझ में आया ? शुद्ध भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने छह द्रव्य, नौ तत्त्व, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय है

अनादि-अनन्त चीज़ें, उनमें से अपना शुद्ध आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, इसका आश्रय करना, उसकी भावना करना, ऐसा मुक्ति पंथ (दर्शाया है)। इसलिए उसे (जो मानता है उसे) भव्य कहा जाता है। '**इच्छयारेन सुद्ध पंथ दर्संति**' क्या कहते हैं? भगवान **इच्छानुकूल...** इच्छानुकूल का अर्थ? सिद्ध भगवान को पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई तो उनकी इच्छा है तो दृष्ट बताते हैं कि देखो भाई! मैंने ऐसी पर्याय प्राप्त की, तू भी ऐसी प्राप्त कर। तुम्हारी इच्छा अनुकूल मुक्ति का पंथ देखना हो तो हमने परमानन्द की प्राप्ति की, तुम भी उस परमानन्द को प्राप्त करो। ऐसा भगवान दुनिया को इच्छा प्रमाण उपदेश देते हैं अर्थात् आदर्श होते हैं। आदर्श होते हैं सिद्ध भगवान। समझ में आया?

अपने ममल स्वभाव देखो... '**सुद्ध पंथ दर्संति**' है न? **शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग को दिखलाते हैं।** शुद्ध उपयोग। अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान में अन्तर लीनता करना, पुण्य-पाप का अशुद्ध उपयोग छोड़ना और अन्तर शुद्ध उपयोग में रमणता करना, वही एक सर्वज्ञ परमात्मा ने शुद्ध उपदेश मोक्ष का कहा है। दूसरे मोक्षमार्ग का दूसरा उपदेश है नहीं। दूसरे कहते हैं, उनसे विरुद्ध है, वह मोक्षमार्ग में नहीं। समझ में आया? और '**षिपिऊन तिविहि कम्मं**' **जिससे तीनों प्रकार के द्रव्य, भाव, नोकर्म...** नोकर्म शरीरादि, द्रव्यकर्म आठ कर्म जड़, भावकर्म पुण्य-पाप के विकल्प। पुण्य और पाप का विकल्प जो उठता है, वह भावकर्म है। आठों जड़कर्म, वे द्रव्यकर्म हैं। शरीर, वाणी, वह नोकर्म है। तीनों का **शुद्धोपयोग के द्वारा क्षय हो जाता है।** दूसरे के द्वारा नाश नहीं होता। शुद्ध उपयोग ही एक मोक्षमार्ग है। मुनि शुद्धोपयोग अंगीकार करते हैं। अट्ठाईस मूलगुण की बात, वह तो व्यवहार की बात है। आते हैं, व्यवहार से कहने में आते हैं कि यह अट्ठाईस मूलगुण मुनियों ने ग्रहण किये। वास्तव में तो शुद्ध उपयोग ही ग्रहण करते हैं। अट्ठाईस मूलगुण ग्रहण किये, यह तो व्यवहारनय का कथन है। उसे ही लोगों ने सर्वस्व मान लिया। तो ऐसा मार्ग है नहीं। क्षय हो जाता है।

'**षिपनिक सहकार कम्म विलयंति**' '**षिपनिक**' का अर्थ किया है कि क्षायिक समकित और क्षायिक चारित्र। यह '**षिपनिक**' का अर्थ किया, भाई! क्षायिक समकित। अपना शुद्धस्वरूप, उसकी ऐसी गाढ़ प्रतीति होना कि जो प्रतीति फिर बदले नहीं,

प्रतीति गिरे नहीं। ऐसा क्षायिक समकित और स्वरूप में स्थिरता यथाख्यातचारित्र, उससे ही **सर्व कर्म प्रभाव से सर्व कर्म गल जाते हैं।** इसके अतिरिक्त दूसरी कोई क्रियाकाण्ड और अपवास-बपवास, ऐसा करने से कर्म नाश पावे, ऐसा भगवान के उपदेश में है नहीं। कहो, मांगीलालजी! कितने अपवास करने से कर्म निर्जरित हों? यह उपवास। उप-वास। उप अर्थात् स्वरूप परमानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति अनन्त गुण का एक समय में पिण्ड, उसके समीप वास अर्थात् बसना, उसका नाम उपवास कहा जाता है। बाकी इस समय के भान बिना अपवास कहने में आते हैं। अप अर्थात् माठो वास, बुरा वास। राग की कोई मन्दता हुई और मान ले कि हमको निर्जरा हो गयी अपवास करने से, ऊनोदरी करने से, बुरा वास है, संसार के वास में जानेवाला है। कहो, समझ में आया? जो मोक्ष के मार्ग में चलना चाहते हों, उनका कर्तव्य है कि **शुद्धोपयोग पर चले, इससे कर्म क्षय होंगे।** बारम्बार भावना का अर्थ है। उसकी यह बात बहुत बार ली है।

४९९ (गाथा)।

चेतन्ति सुद्ध सुद्धं, सुद्धं ससहाव चेत उवएसं।
रुचितं ममल सहावं, रुचियन्तो न्यान निम्मलं ममलं॥४९९॥

क्या कहते हैं? '**चेतन्ति सुद्ध सुद्धं,**' परमात्मा शुद्ध चैतन्य शुद्ध आत्मा का जो अनुभव करता है और वही मोक्षमार्ग में कहा है। समझ में आया? अपना शुद्ध परमानन्द प्रभु का अनुभव करो, वही मोक्षमार्ग है। हम वही करके परमात्मपद पाये हैं। ऐसा सिद्ध भगवान का उपदेश है। ऐसा आदर्श उस प्रकार का बतलाते हैं। '**सुद्ध सुद्धं चेतन्ति**' सिद्ध भगवान शुद्ध चित अर्थात् आत्मा का वे '**चेतन्ति**' अनुभव करते हैं। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग है। बल्लभदासभाई! देखो! व्यवहार क्रिया, दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं।

मुमुक्षु : मदद तो करते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मदद नहीं करते। निमित्त कहने में आते हैं। निमित्त कहा जाता है ज्ञान करने के लिये। समझ में आया? देखो!

देखो! '**चेतन्ति सुद्ध सुद्धं**' अपना भगवान आत्मा शुद्ध निर्मलानन्द शक्ति का

पिण्ड पड़ा है, गुप्त स्वरूप पड़ा है, उसमें एकाकार होकर शुद्ध अनुभव करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। '**सुद्धं ससहाव चेत उवएसं**' उनका वही उपदेश है। भगवान त्रिलोकनाथ सिद्ध परमात्मा का यही उपदेश है कि शुद्ध आत्मिक स्वभाव का अनुभव करो। समझ में आया? और '**ममल सहावं रुचितं**' अब यहाँ आया। **उसी आत्मा के स्वभाव की रुचि करो।** पुण्य-पाप, निमित्त, संयोग की रुचि छोड़ दो। और अपना शुद्ध ज्ञान आनन्दकन्द, उसकी दृष्टि और रुचि करो। देखो! रुचि सम्यग्दर्शन का लक्षण बताया है। ४९९ है न, भाई! रुचि-रुचि। यह कल आया था न! वृक्ष... कहते हैं न? मूल बिना वृक्ष। श्रावकाचार, २१२ पृष्ठ पर है। कल रात्रि में नहीं कहा था? पहले निर्मल रुचि करो। अपना शुद्ध पूर्णानन्द की दृष्टि और रुचि पहले करो। इसके बिना तेरे कल्याण का पंथ, शुरुआत कभी तीन काल में होती नहीं। देखो! २०८ गाथा है श्रावकाचार। अब यहाँ तो पूरा हो जाये, फिर आयेगा तो क्या करेंगे?

जस्य संमिक्त हीनस्य, उग्रं तव व्रत संजुतं।
संजम क्रिया अकार्जं च, मूल बिना वृक्षं जथा॥२०८॥

समझ में आया? मूल बिना वृक्ष नहीं हो सकता। 'मूलो नास्ति कुतो शाखा' आता है या नहीं? शोभालालजी! मूल नहीं, शाखा आयी, फल-फूल आवे। ठीक भाई! मूल नहीं और आये कहाँ से? इसी प्रकार जिसे आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द निर्विकल्पानन्द प्रभु है, ऐसी रुचि, दृष्टि सम्यक् हुई नहीं और व्रत, तप और क्रियाकाण्ड करता है, वह सब रण में रुदन मचाने जैसा है। रण में पोक समझते हो? अरण्य रुदन, जंगल में रुदन। वह उसका रुदन कोई सुने नहीं और रुदन उसका मिटे नहीं।

तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शनरहित है, ऐसी रुचि है। चला न वहाँ ४९९? शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के परिणामरहित कर्मसम्बन्धरहित मैं पूर्णानन्द शुद्ध हूँ। अकेला मेरा स्वभाव पर से भिन्न है। ऐसे अनन्त आत्मायें हैं, अनन्तगुणे परमाणु हैं, यह सब है, परन्तु मैं पर से भिन्न अकेला पूर्ण शुद्ध आत्मा हूँ। ऐसी अन्तर्मुख निर्विकल्प दृष्टि करना, वही सम्यग्दर्शन का लक्षण है। और वह नहीं तो सम्यग्दर्शनरहित उसका उग्र तप, **घोर तप तपता है...** देखो, शब्द पड़ा है। उग्र तप। बारह-बारह महीने के अपवास करता है। मूढ़

है ? मर जाये बारह-बारह महीने के अपवास करके, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना कभी धर्म नहीं होता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जैन में जन्मे....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन किसे कहना ? वाडा में जन्मे, यह सब जन्मे, उन्हें भान भी कब था ? ऐई ! सेठ ! जैन में जन्मे ही नहीं। जैन उसे कहते हैं, लो और यह आया। पृष्ठ २३। श्रावक अव्रत जैन... है इसमें ? इसमें है न ? ४२ पृष्ठ पर है। देखो, भाई ! जैन का शब्द। यहाँ तो जो कुछ बोले, वह थोड़ा-थोड़ा आया है। ४२ ? देखो,

सप्त प्रकृति विछिदो जत्र, सुद्ध दिस्टि च दिस्टिते।
श्रावकं अविरतं जेन, संसार दुष परान्मुषं॥३३॥

३३ गाथा है। श्रावकाचार। यह जैन उसे कहते हैं। वाडा में जन्मे, इसलिए जैन नहीं। समझ में आया ? देखो, क्या कहते हैं ? '**सप्त प्रकृति विछिदो**' जिसे आत्मा शुद्ध चिदानन्द की अन्तर्दृष्टि हुई और जिसने सप्त प्रकृति अनन्तानुबन्धी की चार और मिथ्यात्व की तीन—मिथ्यात्व, समकितमोहनीय, मिश्रमोहनीय, ऐसी चार प्रकृतियाँ हैं, यह तो निमित्त से करणानुयोग का कथन किया है। '**सप्त प्रकृति विछिदो जत्र, सुद्ध दिस्टि च दिस्टिते।**' समझ में आया ? सर्वथा क्षय—नाश होने से शुद्ध आत्मदृष्टि क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक से शुरु किया है। **आत्मा में दिखलाई पड़ता है।** '**श्रावकं अविरतं जेन**' वह अविरति श्रावक होता है। वही जैनी है। देरियाजी ! देखो, '**श्रावकं अविरतं जेन**' ३३वीं गाथा है। समझ में आया ? '**श्रावकं अविरतं जेन**' हों ! अभी अव्रती समकितदृष्टि। ... पाँचवाँ गुणस्थान तो आगे रहा और मुनि तो कहीं आगे रह गये। यहाँ तो कहते हैं कि सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन रुचि, अपना शुद्ध भगवान विकार से रहित, पुण्य-पाप की रुचि से रहित, संयोग की रुचि से रहित, है सब वस्तुएँ परन्तु अपने स्वभाव की रुचि—दृष्टि बिना इस संसार में अव्रती जैन भी कहने में नहीं आता। समझ में आया ? व्रत-ब्रत पाले मिथ्यादृष्टि तो अव्रत जैन भी नहीं है। क्या है ? अभी दृष्टि की खबर नहीं।

'**संसार दुष परान्मुषं' यह अविरति श्रावक होता है, वही जैनी है। वही जैनी है।** जैन का पक्ष होगा तारणस्वामी को ? ... होगा या नहीं ? धूल में भी नहीं, सुन तो सही।

पक्ष नहीं, यह तो जैन की वस्तु ऐसी है। समझ में आया? वस्तु ऐसी है। कुछ जैन उसे कहना, दूसरे को मिथ्यादृष्टि कहना। यह तो भाई! अपनी प्रशंसा और पर की निन्दा। ऐसा है ही नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। अनन्त आत्मा में मेरा आत्मा अत्यन्त शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा सर्वज्ञस्वभाव जैसा भगवान ने कहा, वैसा ही मेरा सर्वज्ञस्वभाव है। मैं जाननेवाला-देखनेवाला हूँ। रागादि आते हैं, वह भी मेरा वास्तविक कर्तव्य नहीं है। तो निमित्त को मिलाना, प्राप्त करना, वह मेरा कर्तव्य नहीं है। ऐसी अन्तर शुद्ध दृष्टि बिना अव्रत जैन कहने में आता नहीं। और अव्रत जैन, भले अव्रती जैन हो। देखो, **'संसार दुष परान्मुषं'** समझ में आया? **वही संसार के दुःखों से विपरीत सुख का भोगनेवाला होगा।** भोगनेवाला है। अव्रती सम्यग्दृष्टि। अन्तर में राग और पुण्य से रहित अपनी दृष्टि जितनी निर्मल की, उतना तो सुख का भोग अन्दर है। वह दुःख से भी पराङ्मुख है। थोड़ा कषाय बाकी जितना रहा, उतनी आकुलता है, परन्तु उससे पराङ्मुख है। उसे आदरणीय मानता नहीं। समझ में आया? उसे जैन अव्रत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। देरियाजी! यह तो तुम्हारे लेख में से तुमको बताते हैं। परन्तु खबर नहीं। लो, सबको मिला दो। इसमें ऐसा है, इसमें वैसा है, इसमें ऐसा है।

जैन परमेश्वर ने जो कहा, त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ, पंचास्तिकाय (कहे हैं)। एक-एक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण। तीन काल, तीन लोक में अन्यत्र ऐसी वस्तु है नहीं। समझ में आया? एक जीव अनन्त, उससे अनन्तगुणे परमाणु, उससे अनन्तगुणा त्रिकाल समय है। कहो, समझ में आया? यह भगवान के अतिरिक्त कहीं नहीं होता तीन काल में। जितने जीव की संख्या है, उससे अनन्तगुणे तो पुद्गल हैं, यह परमाणु, और उनसे अनन्तगुणे त्रिकाल के समय। क्या कहते हैं, सुना ही नहीं। शोभालालजी! सुना नहीं, यह बराबर है या नहीं? बराबर है। सुना नहीं। भाई ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह पुद्गल से अनन्तगुणा तीन काल के समय। तीन काल जितने हैं न। तीन काल। एक सेकेण्ड में असंख्य समय जाते हैं। ऐसे तीन काल। आदि-अन्तरहित तीन काल। यह पुद्गल की संख्या से तीन काल की पर्याय अनन्तगुणी है। वह समय काल का। समझ में आया? और एक-एक आत्मद्रव्य में एक गुण की जो एक समय की पर्याय है, वह एक गुण की (पर्याय) त्रिकाल के जितने समय हैं, उतनी

पर्याय एक गुण की है। यह बात कहाँ है, लाओ! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन, जैनदर्शन कहता है, ऐसी चीज़ मानकर अपने शुद्ध की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

और तीन काल के जितने समय हैं, उनसे आकाश के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। क्या कहते हैं? भगवान जाने क्या होगा? आकाश है या नहीं पदार्थ? छह द्रव्य में आकाश आया या नहीं आकाश? यह गाथा बतायी थी, छह द्रव्य और नौ तत्त्व की। आकाश नाम का एक पदार्थ लोक-अलोक व्यापक अरूपी है। उसमें अनन्त प्रदेश हैं। एक परमाणु पॉईन्ट रखे, उतनी जगह को प्रदेश कहते हैं। अनन्त। कितने? कि तीन काल के समय से अनन्तगुणे। समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह बात तीन काल में, तीन लोक में अन्यत्र कहीं है नहीं।

ऐसा एक आत्मा, उसके अनन्त गुण। उसके एक गुण की एक पर्याय एक समय में। तीन काल की पर्याय, तीन काल के समय जितनी एक गुण की पर्याय, ऐसे अनन्त गुण की त्रिकाल पर्याय और उस त्रिकाल पर्याय का एक समुदायरूप गुण, ऐसे अनन्त गुण के समुदायरूप एक द्रव्य। देरियाजी! मस्तिष्क को फैलाना पड़ता है। समझ में आया? ऐसा जिन भगवान का उपदेश है, ऐसा यदि अन्तर में पहले माना, पश्चात् अन्तर में शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि करता है। जिसे छह द्रव्य, नौ तत्त्व की श्रद्धा की खबर नहीं, उसे यह खबर होती नहीं। कहो, समझ में आया?

संमिक दिस्टिनो जीवा, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं।
परिनामं सुद्ध संमिक्तं, मिथ्या दिस्टि परान्मुषं॥३४॥

लो, यह ३४ गाथा आयी। **सम्यक् दृष्टिवाला जीव शुद्ध तत्त्व का प्रकाश करता है,...** देखो, चौथे गुणस्थान में शुद्ध भगवान आत्मा का प्रकाश करनेवाला होता है। सम्यग्दर्शन शुद्ध परिणाम, वह आत्मा का शुद्ध स्वभाव है। क्या कहा? देखो, वर्तमान में बड़ा अन्तर है। आत्मा शुद्ध स्वभाव, वह यह शुद्ध परिणाम है। क्या? सम्यग्दर्शन गुण नहीं, पर्याय है। देखो, लिखा है। '**परिनामं सुद्ध**' समझ में आया? अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा सम्यक् निश्चय सम्यग्दर्शन, वह एक पर्याय है, गुण नहीं। गुण त्रिकाल रहते हैं।

अभी गुण की खबर नहीं, पर्याय की खबर नहीं। शोभालालजी! भाई! सुनना पड़ेगा थोड़ा-थोड़ा। तुमको कौन कहे वहाँ सेठियाओं को सबको वहाँ? पैसा फाट... फाट हो, गाँव दे पचास हजार, लाख। सब महिमा करे। यहाँ तो सबको... सब मक्खन चोपड़े। मक्खन समझते हो? मस्का। यहाँ तारणस्वामी कहते हैं कि सुन! हमारी श्रद्धा तुझे है? तारण समाज कहना और कहते हैं उसे मानना नहीं। पिताजी सच्चे हैं, उनकी आज्ञा मानना नहीं। ऐई! महेन्द्रभाई!

'संमिक दिस्टिनो जीवा, सुद्ध तत्त्व प्रकासकं। परिनामं सुद्ध संमिक्तं' यह विवाद उठाते हैं। हम तो बहुत समय से कहते हैं, भाई! सम्यग्दर्शन तो पर्याय है। केवलज्ञान भी एक समय की गुण की पर्याय है। एक थे। नाम नहीं लेते हैं। एक क्षुल्लक। अरे! तुमने सम्यग्दर्शन को पर्याय कैसे कहा? वह तो गुण है। सिद्ध में भी आठ गुण हैं। वह गुण है। अरे! सुन तो सही! आठ गुण तो कहा है, वह तो पर्याय है। गुण कहीं प्रगट होते हैं? गुण तो त्रिकाल है। (पर्याय) प्रगट होती है। गुप्त है। गुण तो गुप्त शक्तिरूप है। उसमें से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र प्रगट होते हैं। तीनों आत्मा की पर्याय है, निर्मल अवस्था है, निर्दोष अरागी, वीतरागी पर्याय परिणाम है। परिणाम कहो, पर्याय कहो, स्वभावपर्याय कहो, समझ में आया? अवस्था कहो। यहाँ तारणस्वामी ने उसे शुद्ध परिणाम कहा है। समझ में आया? अभी यह भी खबर न हो, महेन्द्रभाई! राम जाने सम्यग्दर्शन क्या होगा? भगवान तो जानते हैं।

यहाँ तो तारणस्वामी कहते हैं कि भाई! आत्मा के शुद्ध परिणाम हैं। वह यह शुद्ध। दो बोल लिये। शुद्धस्वभाव या शुद्ध परिणाम। पाठ में तो शुद्ध परिणाम ही लिया है। पाठ में शुद्ध परिणाम (लिया है)। **'परिनामं सुद्ध संमिक्तं'** ३४ गाथा। प्रत्येक गाथा में तो बताते हैं। वाँच लेना। पुस्तक साथ में है या नहीं? **'मिथ्या दिस्टि परान्मुषं'** और वह मिथ्यादर्शन विपरीत, उससे पराङ्मुख है। उसकी दृष्टि विपरीत, वह अशुद्ध पर्याय है। अशुद्ध पर्याय मिथ्यादर्शन, वह भी अशुद्ध पर्याय; सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध पर्याय है। मिथ्यादर्शन वह अशुद्ध परिणाम है और सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध परिणाम है। दोनों परिणाम है, पर्याय है। यह दो कोई गुण नहीं। समझ में आया? यह तो इतना लिया।

पश्चात् क्या कहा ? वह ... आया था न। २०८ कहा न ? देखो, क्या कहते हैं ? २०८ में, हों ! भाई ! अपने श्रावकाचार में। मूल बिना व्रत, **जो सम्यग्दर्शन रहित है उसका कठिन तप करना और व्रत पालना और संयम धारना...** '**संजम**' शब्द पड़ा है, देखो। '**उग्र तव व्रत संजम**' यह सर्व क्रिया, यह सर्व व्यवहार आचरण, सर्व व्यवहार आचरण पुण्य, विकल्प शुभ क्रिया है। '**संजम क्रिया अकार्जं**' व्यर्थ है। तुझे किसी काम की नहीं। ठीक परन्तु देरियाजी तो आये इस बार यहाँ। वहाँ भोपाल में आये थे ?

मुमुक्षु : हाँ, आये थे। ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ, यह भी आये थे ? यह आये थे। कुछ अधिक लोग नहीं। समझ में आया ?

'**अकार्जं**' क्या कहते हैं ? भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा आत्मा शुद्ध एक स्वभावी अनन्त आनन्द का कंद ऐसी अन्दर प्रतीति का भान नहीं तो तेरी सब क्रिया व्यर्थ-अकार्य है। चार गति में भटकानेवाली है। स्वर्ग में जाये तो भी वह का वह ढोर होगा, फिर ढोर होगा। स्वर्ग में से फिर ढोर होगा। ढोर समझे ? पशु। '**अकार्जं**' '**मूल बिना वृक्ष जथा**' देखो, पाठ लिया है। **मूल के बिना वृक्ष नहीं हो सकता।** यह २०८ गाथा। नाम लेकर तो कहते हैं। देखो, श्रावकाचार। '**मूल बिना वृक्ष जथा**' इसका लम्बा अर्थ बाद में भाई ने किया है। मूल पाठ इतना अपने। तारणस्वामी का इतना अर्थ है।

पश्चात् २०९।

संमिक्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणा होंति, संमिक्तं जस्य हिदयस्य॥२०९॥

अपने यह कहा न, '**दंसण मूलो धम्मो**' बड़े शब्द हैं न ! '**दंसण मूलो धम्मो**' धर्म का मूल दर्शन है। यह कुन्दकुन्दाचार्य का दर्शनपाहुड़ है न ? दर्शनपाहुड़ लिखा है, देखो ! दर्शनपाहुड़ नीचे लिखा है। दर्शनप्राभृत। नीचे लिखा है छोटे अक्षर में। ... उसमें '**दंसण मूलो धम्मो**' सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। तो जैसे सम्यग्दर्शन मूल नहीं तो उसकी शाखा, प्रतिशाखा होती नहीं। धर्म चारित्र है। स्वरूप में लीनता, आनन्द और उग्र शान्ति प्रगट करना, वह चारित्र, वह धर्म है। चारित्तं खलु धम्मो। चारित्र, वह धर्म है।

परन्तु उस धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन मूल बिना कभी उसकी शाखा, प्रतिशाखा चारित्र होता नहीं।

संमित्तं जस्य मूलस्य, साहा व्रत डाल नंतनंताई।
अवरेवि गुणा होंति, संमित्तं जस्य हिदयस्य॥२०९॥

जिसे सम्यग्दर्शनरूपी मूल अर्थात् जड़ है... मूल पाठ में '**मूलस्य**' फिर नीचे शीतलप्रसादजी ने अर्थ किया है। जड़ किया जड़। मकान की नींव होती है न? क्या कहते हैं? नींव। जिसे सम्यग्दर्शनरूपी मूल है, उसे शाखायें '**व्रत डाल नंतनंताई।**' व्रत अनन्तानन्त हो सकते हैं। व्रत अर्थात् कुछ विकल्प नहीं, हों! स्वरूप की स्थिरता। व्रत आते हैं, बीच में अट्ठाईस मूलगुण, परन्तु वह वास्तव में व्रत नहीं। सम्यग्दर्शन की शाखा प्रस्फुटित होती है। प्रस्फुटित होते-होते स्वरूप में स्थिरता होती है। इतनी स्थिरता होती है कि अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... स्थिरता बढ़ते-बढ़ते यथाख्यातचारित्र की स्थिरता हो जाती है और उसके फलरूप से केवलज्ञान हो जाता है। और जिसके मूल में सम्यग्दर्शन है, उसे यथाख्यातचारित्र आदि की सिद्धि होकर केवलज्ञान का फल वृक्ष का प्राप्त हो जाता है। जिसे यह मूल नहीं, उसे कुछ भी लाभ नहीं। समझ में आया? '**नंतनंताई**' देखो, वृक्ष रूपी अनन्तानन्त शाखा। समझ में आया? निर्मल पर्याय अनेक प्रकार की अनन्त-अनन्त।

'**अवरेवि गुणा होंति**' जो अपने यहाँ रुचि चलती है न उपदेशसार में। जिसकी रुचि सम्यक् शुद्धात्मा की हुई, उसे '**अवरेवि गुणा**' बहुत गुण होते हैं। '**संमित्तं जस्य हिदयस्य**' '**संमित्तं जस्य हिदयस्य**' जिसके ज्ञान में, अन्तर में सम्यक्त्व है, उसे अनेक गुण की प्राप्ति हो जाती है और उस गुण बिना तेरे व्रत और नियम और फल, वह सब बिना एक के शून्य हैं। उसकी तो खबर नहीं। राजारामजी! सम्यग्दर्शन की खबर नहीं और ले लो प्रतिमा, ले लो व्रत और ले लो यह। धूल में है। माल नहीं, वाड की लो। मोल समझते हो? फसल। फसल नहीं, वाड बनाओ काँटे की बड़ी मजबूत। अन्दर पशु न आवे। माल नहीं और वाड़ किसकी? समझ में आया? यह तो तारणस्वामी कहते हैं '**अवरेवि गुणा होंति, संमित्तं जस्य हिदयस्य**' समझ में आया? उसमें भी बहुत बात ली है।

संमिक्तं बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं।
अनेयं व्रत चरनं, मिथ्या तप बाटिका जीवो॥२१०॥

'**संमिक्तं बिना जीवा, जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं**' ग्यारह अंग, नौ पूर्व तक पढ़े। लो! देखो, '**जानै अंगाई श्रुत बहुभेयं**' मूल दृष्टि सम्यक्त्व बिना ज्ञान कैसा तेरा? पठन ग्यारह अंग और नौ पूर्व? देखो, पाठ। '**श्रुत अंगाई बहुभेयं' ग्यारह अंग नौ पूर्व तक बहुत प्रकार शास्त्र को जाने...** अथवा '**अनेयं व्रत चरनं' अन्य जो कोई बहुत व्रतादि का आचरण करे, वह सब... 'मिथ्या तप बाटिका जीवो।**' मिथ्या तप का निवासरूपी जाल है। लो! यह मिथ्यातप का निवासरूपी गहन जाल में घुस गया है। मूढ़ जाल में प्रविष्ट हो गया है। उसे सम्यग्दर्शन बिना तेरा जाल है, अज्ञान का जाल बिछा हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

यह तत्त्वार्थश्रद्धान है न, भाई! यह लोग कहते हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धान कहीं निकाला था न? वह २३७ पृष्ठ। यह न? देखो २३७। देखो, क्या कहते हैं? रत्नत्रय का स्वरूप बताते हैं। उसमें दर्शन, ज्ञानं चारित्रं साधन शुद्धात्मागुणं... .... देखो, शुद्धात्मा गुण प्रयोग किया है। .... सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र के साथ शुद्धात्मा के गुण। **शुद्धात्मा के गुणों के द्वारा अविनाशी तत्त्व का प्रकाश होता है, वही तत्त्व यथार्थ ज्ञानमय निश्चल है।** अब फिर कहते हैं। २३६।

दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।
मय मूर्ति संपूर्नं च, स्वात्म दर्सन चिंतनं॥२३६॥

यह तत्त्वार्थश्रद्धान व्यवहार नहीं। बड़ी गड़बड़ अभी चलती है। इन्होंने अर्थ किये हैं जरा, हों! शीतलप्रसादजी ने। यह सात तत्त्व की श्रद्धा यहाँ नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि '**दर्सनं तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।**' उमास्वामी में आता है न तत्त्वार्थश्रद्धानं, उसे अभी कितने ही पण्डित कहते हैं कि वह व्यवहार है... व्यवहार है। नहीं... नहीं... नहीं... निश्चय समकित की बात है तत्त्वार्थश्रद्धानं। मोक्षशास्त्र है या बन्धशास्त्र है? किसी दूसरी जगह, किसी जगह तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार गिनने में आया है, परन्तु यहाँ नहीं। यहाँ नहीं, देखो! यह तारणस्वामी भी यहाँ कहते हैं कि '**दर्सनं तत्त्व सार्धं**

च, तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं। मय मूर्ति संपूर्नं च, स्वात्म दर्सन चिंतनं।' खबर नहीं खबर। शोभालालजी! फिर सिर पर बैठे। जय नारायण! अच्छा है, अच्छा है। तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनं। जो उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र में पहला सूत्र कहते हैं, वही यहाँ प्रकाशित किया है, देखो! वहाँ '**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणी मोक्षमार्गः**' लिया है। तो पहले यहाँ २३५ में यह लिया है। '**दर्सनं न्यान चारित्रं, सार्धं सुद्धात्मा गुनं।**' पश्चात् दूसरा सूत्र लिया तत्त्वार्थश्रद्धान। उसमें। तो दूसरी गाथा में तत्त्वार्थश्रद्धान लिया है। यह तो क्रमसर आचार्यों ने कहा, उनकी भाषा में उन्होंने रचा है। समझ में आया?

पहला सूत्र आया २३५ में, दूसरा सूत्र आया २३६ में। हमने तो बहुत पढ़ा नहीं उनका। यह तो थोड़ा-थोड़ा सेठ कहते हैं न, इसलिए थोड़ा-थोड़ा पढ़ा है। सवेरे थोड़ा-थोड़ा देखा है। समझ में आया? मिलान करके बहुत नहीं देखा। '**दर्सनं तत्त्व सार्धं च' तत्त्व का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है, यह भवसागर से तीर्थ नाम जहाज है।** कहो, महेन्द्रभाई! तत्त्वार्थश्रद्धान, व्यवहारश्रद्धान, वह भवसागर से तिरने का जहाज है? व्यवहार समकित तो राग है। समझ में आया? जितना व्यवहार समकित हो भले, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नौ तत्त्व, छह द्रव्य की श्रद्धा होती है, परन्तु वह है विकल्प, वह राग है, वह आस्रव है, वह उदयभाव है। समझ में आया? तो आस्रव से भवसागर तिरता है, ऐसी बात तीन काल में नहीं है। सेठ! समझना पड़ेगा।

देखो, '**तिअर्थं सुद्ध दिस्टतं।' यह भवसागर से तिरने का तीर्थ जहाज है।** कौन? तत्त्वार्थश्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन। व्यवहार सम्यग्दर्शन जहाज नहीं। वह तो आस्रव है, आता अवश्य है। पूर्ण न हो, तब तक देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का राग होता है, परन्तु वह मोक्षमार्ग है या संवर-निर्जरा का कारण है, ऐसा नहीं है। कड़क लगे दुनिया को या न लगे, परन्तु वस्तु तो ऐसी है। '**ज्ञान मूर्ति संपूर्नं च**' देखो, क्या कहते हैं? **यही शुद्ध दृष्टिमय है। यह शुद्ध दृष्टि...** ऐसा लिया, भाई! '**सुद्ध दिस्टतं**' व्यवहार समकित वह शुद्ध नहीं। समझ में आया? यदि तत्त्वार्थश्रद्धान को व्यवहार समकित कहो तो वह अशुद्ध है और यहाँ तो कहा कि '**सुद्ध दिस्टतं**'। उमास्वामी ने जो

कहा न, उसका ही अनुसरण करके इनकी भाषा में बनाया है। **'सुद्ध दिस्टतं' यही शुद्ध दृष्टिमय है।** अपने चिदानन्दस्वभाव के भानपूर्वक उसमें सातों तत्त्व की श्रद्धा निर्विकल्प, हों! राग नहीं। ऐसी श्रद्धा करना, **यही शुद्ध दृष्टिमय है। जहाँ ज्ञानमूर्ति, ज्ञानमूर्ति अपने सब गुणों से पूर्ण अपने में आत्मा का दर्शन है व चिन्तवन है।** देखो, यह तत्त्वार्थश्रद्धान में ही ज्ञानमूर्ति भगवान सम्पूर्ण अपने सर्व गुणों से पूर्ण ऐसा **'स्वात्म दर्सन चिंतनं'** यहाँ चिन्तन शब्द से विकल्प नहीं लेना परन्तु उस अपने स्वरूप का दर्शन, वही एकाग्रता है। उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय कहा जाता है। समझ में आया?

यह तो कितने वर्ष से विवाद था। सम्यग्दर्शन पर्याय है। वह तो गुण है। भाई! वह गुण नहीं, प्रभु! सुन तो सही, भाई! गुण तो निगोद में भी अनन्त हैं, सिद्ध में भी अनन्त हैं। गुण तो ध्रुवरूप रहते हैं। द्रव्य और गुण तो ध्रुवरूप रहते हैं और पर्याय प्रगट होती है। संसार भी आत्मा की एक विकारी पर्याय है। संसार स्त्री, पुत्र, परिवार में नहीं रहता। समझ में आया? संसार तम्बाकू में नहीं रहता। शोभालालजी! संसार—संसरणं इति संसारः। भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध ज्ञान में से संसरण—हटकर मिथ्यादृष्टि का भाव, राग-द्वेष का भाव हो, उसे भगवान संसार कहते हैं। तो संसार आत्मा की एक अशुद्ध पर्याय है और मोक्षमार्ग भी आत्मा की एक अपूर्ण शुद्ध पर्याय है। अपूर्ण शुद्ध पर्याय है इतना। और मोक्ष, वह आत्मा की पूर्ण शुद्ध पर्याय है। समझ में आया? देरियाजी! बात तो बहुत सादी चलती है। समझ में आये ऐसी है, ऐसी कहीं गूढ नहीं आती है।

भगवान आत्मा अनादि-अनन्त वस्तु की पर्याय में जब तक श्रद्धा विपरीत, राग-द्वेष के परिणाम होते हैं, उसे भगवान संसार कहते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार सब तो छूट जाता है। शरीर, स्त्री और परिवार यदि संसार हो तो वह तो छूट जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार छूट गया। मुक्ति होनी चाहिए। संसार उसकी दशा में है। संसारतत्त्व, आस्रव-बन्धतत्त्व को संसारतत्त्व कहा है। समझ में आया? जीवादि सात तत्त्व है न? उसमें आस्रव और बन्ध पर्याय, वही संसारतत्त्व है। जड़ नहीं, कर्म नहीं, वह संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। आहाहा! रामस्वरूपजी! समझ में आया? यह राम का प्रसाद, इसका नाम है। 'निजपद रमे सो राम कहिये, निजपद रमे सो राम कहिये।' पूर्णानन्द प्रभु

अपनी श्रद्धा, ज्ञान में रमे, उसे राम कहते हैं, बाकी दूसरे को अराम कहते हैं। कहो, समझ में आया?

.... संसारपर्याय पर्याय है—अवस्था है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों पर्याय है। तीनों मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय है और पूर्ण शुद्ध केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त गुण की पर्याय पूर्ण सिद्ध को (प्रगट हुई), वह पूर्ण पर्याय है। पूर्ण शुद्ध है, परन्तु है तीनों पर्याय। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो बोले। यह तो गुण (कहे जाते हैं)। विकार को अवगुण कहा, तो विकार के नाश को गुण कहा, परन्तु है तो दोनों पर्याय। समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान घट गया। लोक में क्या द्रव्य है और क्या गुण है और क्या पर्याय है, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं, यह खबर बिना सब खिचड़ा-खिचड़ा (करे)। खिंचड़ा समझते हो? दाना और कंकड़। कहते हैं, देखो,...। '**स्वात्म दर्सन चिंतनं**' वह अपने दर्शन का चिन्तवन। चिन्तवन शब्द से एकाग्रता है, हों! अन्दर निर्मल पर्याय। चिन्तवन में जितना विकल्प उठता है, उतना राग है। अन्दर में एकाग्रता हुई है। समझ में आया? देखो, पश्चात् भी लेते हैं। देखो!

दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं।
जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं॥२३७॥

यह रुचि का चलता है, हों! अपने यहाँ ४९९ चलती है न? '**रुचितं ममल सहावं,**' यह '**रुचितं ममल सहावं,**' कहो या तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्व कहो, दोनों एक ही बात है। समझ में आया? देखो, '**दर्सनं सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं। जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं।**' क्या कहते हैं? सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय। पाँच अस्तिकाय समझते हो? काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय है। काल अस्ति है, परन्तु काय नहीं। काल असंख्य अणु है, परन्तु भिन्न-भिन्न है। अस्ति है चौदह ब्रह्माण्ड लोक प्रमाण एक-एक आकाश (प्रदेश) में एक-एक अणु, अरूपी काल अणु है। देखो इन छह द्रव्यों में कालाणु आता है। पंचास्तिकाय में वह नहीं आता। क्योंकि अस्ति

है, काय नहीं। एक-एक है। तो कहते हैं, पाठ देखो। **'सप्त तत्वानं, दर्व काय पदार्थकं दर्सनं'** उसकी यथार्थ श्रद्धा करना, उसमें से फिर आत्मा का शुद्ध दर्शन करना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? दूसरे में छह द्रव्य, पंचास्तिकाय कहाँ है? अभी तो छह द्रव्य की खबर नहीं। शोभालालजी! छह द्रव्य की खबर नहीं। नाम नहीं आते, लो! अनन्त जीव, अनन्त परमाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश और कालाणु असंख्य हैं असंख्य। उन्हें जाति से छह द्रव्य कहते हैं। संख्या से अनन्त। ऐसी प्रतीति पहले व्यवहार से यथार्थ होनी चाहिए। ज्ञान में ऐसी बात न आवे तो उसे शुद्ध सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

पंचास्तिकाय। यह काल एक अस्ति है, काय नहीं। असंख्य अणु हैं। रत्न का ढ़ेर होता है न? रत्न का ढ़ेर। तो एक रत्न दूसरे में मिलता नहीं। इसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड में असंख्य कालाणु रत्न के ढ़ेर हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न रत्न हैं। एक नहीं होते। इसलिए पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थ का श्रद्धान करना। समझ में आया? इन्होंने फिर स्वयं कहा भाई यह तो। यह भेदवाला है न, इसलिए व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा, परन्तु वास्तव में तो उस सहित **'जीव द्रव्यं च सुद्धं च, सार्धं सुद्धं दरसनं।'** शुद्ध जीवद्रव्य का यथार्थ श्रद्धान करना, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। व्यवहार तो पहले श्रद्धा में आता है। परन्तु वह है तो निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। निश्चय होता है तो उसे व्यवहार कहा जाता है। बात में बहुत अन्तर है। भाई! यह व्यवहार श्रद्धा है न, तो वह निश्चय का कारण है, ऐसा नहीं है। व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु वास्तव में है नहीं। अन्तर शुद्ध सम्यक् अन्तर रुचि प्रगट हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है।

मुमुक्षु : यह तो निश्चय हुआ तो व्यवहार होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब व्यवहार साथ में होता ही है, वीतरागता न हो तब तक। देखो, ४९९।

'रुचितं ममल सहावं,' कैसा है सम्यग्दृष्टि? जिसे निर्मल स्वभाव की रुचि हो गयी है। यहाँ तो रुचि करो, ऐसा कहते हैं न? रुचि करो। प्रभु निर्मल स्वभाव है। वह पुण्य-पापभाव मलिन है, वे अशुद्ध हैं। श्रद्धा में लाना चाहिए कि है, आदरणीय नहीं।

'**रुचितं ममल सहावं,**' और '**रुचियन्तो न्यान निम्मलं ममलं।**' और रुचि से ही वह '**रुचियन्तो**' ऐसा शुद्धस्वभाव, ऐसे आत्मा की रुचि से ही ज्ञान आवरणरहित '**निम्मलं**' है न? '**निम्मलं**' ज्ञान आवरणरहित और '**निम्मलं**' अथात् वीतरागता हो जाती है। मलरहित हो गया। वीतराग अर्थात् रागरहित। समझ में आया? देखो, शुद्धता की धुन में अकेली शुद्धता घोंटी है। बारम्बार श्लोक में देखने में आवे, धुन शुद्धता की थी न, तो उस धुन में शुद्धता साधारण शब्द में बारम्बार ले लिया है। कहो, समझ में आया? ४९९ हुई।

५०० (गाथा)।

उत्तं च सुद्ध सुद्धं, उत्तायन्तु ममल कम्म विलयं च।
परषे परम सुभावं, परषंतो सुद्ध कम्म विलयंति॥५००॥

'**उत्तं च सुद्ध सुद्धं,**' सिद्ध का स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है। यहाँ तो सिद्ध समान तेरा आत्मा है, ऐसी दृष्टि कर, ऐसा कहना है न! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो, चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' समझ में आया? पर्याय में मलिन है, नहीं है, ऐसा नहीं, परन्तु स्वरूप सिद्ध समान है। ऐसी अन्तर की दृष्टि सिद्ध का स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है। ऐसी दृष्टि करो। '**उत्तायन्तु ममल कम्म विलयं च**' **...हुए निर्मल स्वभाव को प्राप्त करने से कर्म विला जाता है।** '**कम्म विलयं**' कर्म नाश पाते हैं। इसके अतिरिक्त कोई बाहर की क्रिया आचरण से कर्म नाश पाते नहीं। समझ में आया?

वर्तमान में तो इतनी गड़बड़-गड़बड़ कि ओहोहो! निश्चय की तो गन्ध भी रही नहीं और अकेला व्यवहार। तो निश्चय बिना तो भगवान व्यवहार तीन काल में कहते ही नहीं। व्यवहारमूढ़ कहते हैं। समयसार-४१३ गाथा। तेरे निश्चय बिना व्यवहार कैसा? व्यवहार का आरोप, हों! आरोप कैसा? निश्चय का भान नहीं, शुद्ध दृष्टि नहीं, आत्मा का भान नहीं। व्यवहार विकल्प को व्यवहार कहे कौन? देखे बिना अन्ध को यह अन्धा है, ऐसा जाने कौन? व्यवहार तो अन्धा है। समझ में आया? रागादि आते हैं पुण्यादि परिणाम, परन्तु वह तो अन्ध है। उसमें चैतन्यप्रकाश का अंश है ही नहीं।

भगवान चैतन्यप्रकाश की प्रतीति, ज्ञान, अनुभव बिना तेरे व्यवहार को व्यवहार कहे कौन ? वह तो व्यवहारमूढ़ है। ऐसा कहते हैं। व्यवहारमूढ़ है। व्यवहार का ज्ञायक है, ऐसा नहीं।

कहते हैं कि सिद्ध भगवान उत्कृष्ट स्वभाव को देखते हैं। **'परषे परम सुभावं,'** देखो, **'परषे'** का अर्थ देखते हैं, ऐसा किया। **'परषे'** अर्थात् देखते हैं, ऐसा। सिद्ध भगवान, समझ में आया ? उत्कृष्ट स्वभाव को देखते हैं। पूर्ण केवलज्ञान, पूर्ण दर्शन अपनी पर्याय को देखते हैं। पूर्ण पर्याय वास्तव में देखते हैं, उसमें लोकालोक आ जाते हैं, परन्तु वास्तव में तो निश्चय से अपने को ही देखते हैं। अपना केवलज्ञान, केवलदर्शन, स्व-परप्रकाशक में लोक-अलोक छह द्रव्य का ज्ञान आ गया। तो अपनी पर्याय देखने में लोकालोक का ज्ञान आ जाता है।

'परषंतो सुद्ध कम्म विलयंति' शुद्ध अविनाशी स्वभाव को देखने से, अनुभव करने से कर्म गल जाते हैं। देखो, समझ में आया ? इस प्रकार से सिद्ध समान अपना शुद्ध स्वभाव अनुभव करने से अथवा देखने से कर्म गल जाते हैं। **जिस मार्ग से चलकर आत्मा ने सिद्ध गति पाई...** उस मार्ग से ही चलना **भव्य जीवों का कर्तव्य है।** यह शब्दार्थ लिखा है। **यह शुद्ध उपयोग ही शुद्धि का उपाय है।** कहीं-कहीं डाल दिया है, भाई ! शुभ व्यवहार से निश्चय होता है, व्यवहार से निश्चय होता है। परन्तु यहाँ डालते हैं घर का। श्रावक अधिकार आगे आता है, उसमें लिया है। व्यवहार उसमें लिया है। वह तो व्यवहार किस अपेक्षा से लिया है ? यहाँ लिया है। वह प्रवचनसार में लिया है न ! श्रावक को वह परम धर्म। व्यवहार परम धर्म। उसमें भी ऐसा लिया है। आगे लिया है। यह दान में लिया है। मुनि को दान देने से मुक्ति होती है। दान देने से मुक्ति नहीं। परन्तु वह शुभराग है, उसे उपचार से कहा है। वह तो प्रवचनसार में भी ऐसा चला है। उसमें भी ऐसा लिया है। कहीं लिया है। लिखा नहीं। सबमें नहीं लिया। यह तो व्यवहार से लिखते हैं कि महामुनि को दान देना, वह तो विकल्प / राग है। समझ में आया ? परन्तु श्रावक को अशुभ बहुत होता है, उससे बचने के लिये शुभभाव को परम धर्म कहने में आया है। प्रवचनसार में कहा है। तारणस्वामी ने कहीं कहा है। दान के अधिकार में है। यह लिखा नहीं। यह ख्याल है। लिखा है उसमें। दान देने से मुक्ति होती

है, शुद्धता होती है। यह व्यवहार से कहा है। वास्तव में परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जाता है, वहाँ तो विकल्प उठते हैं। शुभ है। तो सम्यग्दृष्टि को अशुभ से बचने के लिये वह परम्परा राग छोड़कर शुद्ध होगा, इस अपेक्षा से उसे निर्जरा होती है, ऐसा कहा गया है। वास्तव में परद्रव्य से उस विकल्प में निर्जरा-फिर्जरा होती नहीं।

तो यहाँ कहते हैं कि शुद्ध अविनाशी स्वभाव। **भव्य जीवों को शुद्ध उपयोग ही करना कर्तव्य है।** यह जरा अशुद्ध उपयोग है, उसमें कथनशैली व्यवहार की आती है, इसलिए कहा है, यथार्थ में ऐसा नहीं है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)